गेहूँ–धान फसल चक्र में ग्रीष्मकालीन मूँग

ओ.पी. लठवाल, आर.के. मलिक एवं वाई.एस. तोमर

गेहूँ → मूँग → धान

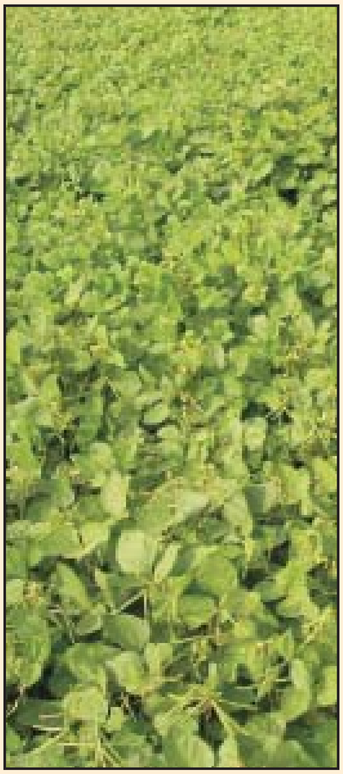
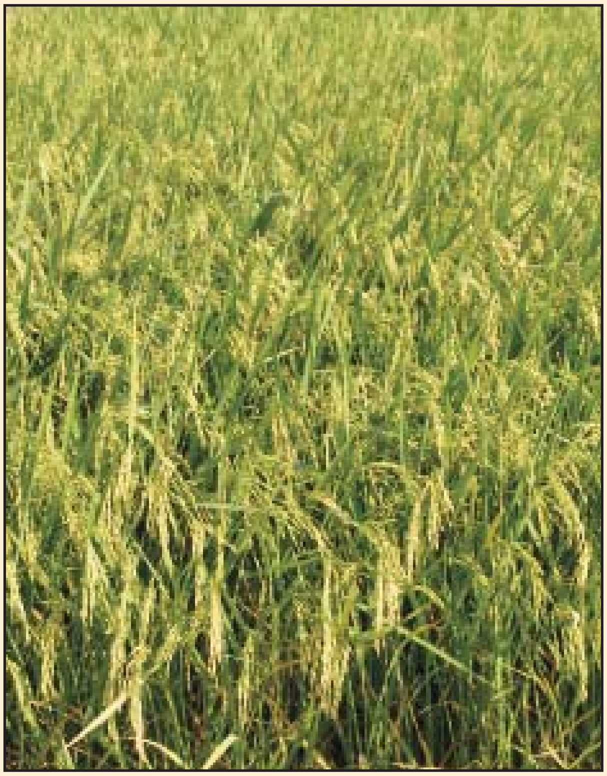

विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

उद्धरण

ओ. पी. लठवाल, आर. के. मलिक एवं वाई. एस. तोमर. 2007. गेहूँ-धान फसल चक्र में ग्रीष्मकालीन मूँग, बुलेटिन संख्या (22), कृषि विज्ञान केन्द्र, कुरूक्षेत्र, विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार।

आवरण पृष्ठ

गेहूँ, मूँग एवं धान की फसल

लेखक

ओ. पी. लठवाल, वरिष्ठ विस्तार विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, कुरूक्षेत्र

आर. के. मलिक, विस्तार शिक्षा निदेशक, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार।

वाई. एस. तोमर, सह-निदेशक (फार्म एडवाईजरी सर्विस), चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार।

संपादक

कृष्णा हुड्डा, सह-प्राध्यापिका (हिन्दी), चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार।

आर. पी. बंसल, सह-निदेशक (प्रकाशन), चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार।

इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्यिगिकी मन्त्रालय के जैव प्रौद्यिगिकी विभाग द्वारा प्रदत वित्तीय सहायता अधीन "हिसार तथा सोनीपत जिले के गांवों में डी.बी.टी. (जै.प्रौ.वि.) ग्रामीण जैव-संसाधन संकुल" की विशिष्ठ परियोजना के अन्तर्गत आर्थिक सहायता प्रदान की है।

इस प्रकाशन में प्रस्तुत की गई सामग्री और लिए गए पदनाम किसी भी रूप में चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार के विचारों की अभिव्यक्ति नहीं है तथा किसी भी देश, क्षेत्र, शहर और इलाके या उसके अधिकारियों या सीमाओं और सीमान्त प्रदेशों की सीमांकन की कानूनी स्थिति से संबंधित नहीं है। जहां कहीं भी ट्रेड नामों का इस्तेमाल किया गया है, उसे किसी की पुष्टि या किसी के प्रति भेदभाव नहीं समझा जाना चाहिए।

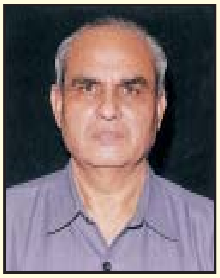

कुलपति
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

प्राक्कथन

आज के संदर्भ में गेहूँ-धान फसल चक्र में विविधीकरण की ओर प्रयास किए जा रहे हैं क्योंकि भूमिगत जल स्तर लगातार नीचे जा रहा है तथा साथ-साथ धान-गेहूँ फसल चक्र की उत्पादकता भी स्थिर बनी हुई है। किसानों की आमदनी बढ़ाने हेतु वर्तमान फसल चक्र के अन्तर्गत ग्रीष्मकाल में मूँग की फसल को सफलतापूर्वक लिया जा सकता है। मूँग उगाने से प्रति ईकाई मुनाफा बढ़ने के साथ-साथ ग्रीष्मकालीन धान उगाने की कुप्रथा पर भी रोक लगाकर जल जैसे अमूल्य प्राकृतिक संसाधन को बचाया जा सकेगा। फसल-चक्र में दलहन का समावेश होने से भूमि की उर्वरा शक्ति भी बरकरार रहेगी। अल्पावधि ग्रीष्मकालीन मूँग की किस्में उगाकर गेहूँ-धान फसल चक्र से अतिरिक्त आमदनी प्राप्त हो सकती है।

मुझे आशा है कि 'गेहूँ-धान फसल चक्र में ग्रीष्मकालीन मूँग' पुस्तिका विशेषकर गेहूँ-धान वाले क्षेत्र के किसानों व कृषि-प्रसार-कार्यकर्ताओं के लिये मार्गदर्शन व नवीनतम जानकारी उपलब्ध करवाने तथा मूँग के तहत क्षेत्रफल में वृद्धि हेतु सार्थक साबित होगी।

(जे. सी. कत्याल)

आमुख

उत्तरी भारत विशेषकर पंजाब व हरियाणा में पिछले चार दशकों से गेहूँ-धान फसल चक्र सर्वाधिक क्षेत्र में प्रचलित है। गेहूँ-धान फसल चक्र के परिणामस्वरूप भूमि की उर्वरा शक्ति में कमी, भूमिगत जल स्तर में गिरावट, खरपतवार प्रतिरोधिता की समस्याओं के साथ-साथ धान व गेहूँ की उत्पादकता में भी ठहराव आ गया है। कृषि लागत में लगातार वृद्धि से प्रति ईकाई मुनाफा भी घट रहा है। ऐसे हालात में किसान, कृषि वैज्ञानिक व नीति निर्धारक, वर्तमान फसल पद्धति में मूल्य संवर्धन की ओर प्रयासरत हैं।

खाद्यानों की जरूरत को ध्यान में रखते हुए धान व गेहूँ फसलों के क्षेत्र में कमी करना सम्भव नहीं है। परन्तु इस फसल चक्र में ग्रीष्मकालीन मूँग का समावेश करके किसानों की आय में वृद्धि अवश्य की जा सकती है। गेहूँ के बाद धान की रोपाई से पहले ग्रीष्मकालीन मूँग उगाकर खाली समय का सदुपयोग करके प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण भी किया जा सकता है। ग्रीष्मकालीन मूँग की काश्त सरल व संभव है। इसका विवरण इस पुस्तिका में दिया गया है। पुस्तिका में ग्रीष्मकालीन मूँग के सफल प्रदर्शनों के आंकलन के साथ-साथ अन्य सम्बन्धित कृषि क्रियाओं पर विस्तार से चर्चा की गई है। आशा है कि यह पुस्तिका गेहूँ-धान फसल-चक्र बाहुल्य क्षेत्र के किसानों व कृषि विस्तार शिक्षा में सेवारत कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन करेगी।

मार्गदर्शन एवं सहयोग हेतु हम डॉ. एस.एस. पाहुजा, विभागाध्यक्ष (सस्य विज्ञान), डॉ. जे. एस. डाल, वरिष्ठ समन्वयक, डॉ. आर.एस. ढुकिया, वरिष्ठ विस्तार विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान), डॉ. सतीश कुमार, सस्य वैज्ञानिक (दलहन अनुभाग), कृषि विज्ञान केन्द्र के वैज्ञानिकों, प्रगतिशील किसान श्री गुरदेव सिंह व श्री चरण लाल का धन्यवाद ज्ञापित करते हैं जिनके प्रोत्साहन व अनुभवों से इस पुस्तिका का लेखन कार्य सम्पूर्ण हो सका है।

लेखकगण

भारतीय कृषि व्यवस्था में दलहनी फसलों का विशेष महत्व एवं योगदान है क्योंकि विश्व में भारत दलहनी फसलों का सबसे बड़ा उत्पादक देश होने के साथ-साथ सबसे बड़ा उपभोक्ता भी है। भारत में दालों की खपत सबसे अधिक है क्योंकि यहां पर अधिकतर लोग शाकाहारी हैं और दाल शाकाहारी भोजन का अहम् हिस्सा है। दूसरा सबसे बड़ा कारण भारत की अधिक आबादी का होना है जिसमें 69 प्रतिशत जनसंख्या तो कृषि पर ही निर्भर रहती है। हमारे देश में कृषि पर निर्वहन करने वाली 72 करोड़ जनसंख्या, लगातार घटती हुई जोत, खेती की बढ़ती लागत, भूमि की घटती उर्वरा शक्ति, सूखा व बाढ़ का प्रकोप, कृषि क्षेत्र में कम होता निवेश, विश्व व्यापारीकरण की चुनौतियां आदि कारकों ने बुद्धिजीवी वर्ग व किसानों को नवीनतम कृषि तकनीक के बारे में सोचने पर मजबूर कर दिया है। यहां नवीनतम कृषि तकनीक से तात्पर्य ऐसी कृषि क्रियाओं से है जिसमें कम से कम संसाधनों का प्रयोग करके, भूमि की उपजाऊ शक्ति बनाये रखकर और कम लागत में अधिक मुनाफा कमाया जा सके। इन हालातों में अनाज वाली फसलों के साथ-साथ दलहनी फसलों को उगाना अत्यन्त जरूरी हो गया है और गेहूँ-धान फसल चक्र में ग्रीष्मकालीन मूँग को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

दालों का उत्पादन :

भारतवर्ष में दालों के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हो पाई है (तालिका 1) परन्तु अनुमानित मांग लगातार बढ़ती ही जा रही है (तालिका 2)। दलहनी फसलों के उत्पादन में स्थिरता का मुख्य कारण (लगभग 92 प्रतिशत) केवल वर्षा पर आधारित क्षेत्रों में ही काश्त का लिया जाना है। इसके अतिरिक्त वर्षा पर निर्भरता के कारण असामयिक बिजाई, फसल प्रबन्धन में कमी, उर्वरकों व कीटनाशकों का बहुत कम प्रयोग, सीमान्त क्षेत्रों में काश्त तथा घटता-बढ़ता बाजार भाव भी दलहनी फसलों के उत्पादन पर प्रभाव डालते हैं। इसलिए यदि एकल फसल के क्षेत्रफल में वृद्धि सम्भव न हो तो दलहनों को अन्तःवर्त्ती फसल के रूप में उगाकर या कम अवधि वाली किस्मों को फसल चक्र में समावेश करके दाल उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है (जिससे भविष्य की अनुमानित मांग को पूरा किया जा सके। हरियाणा के धान-गेहूँ फसल चक्र वाले क्षेत्रों में (विशेषकर अम्बाला, पंचकुला, करनाल, यमुनानगर,

तालिका 1. दलहनी फसलों का उत्पादन

वर्ष	दलहन उत्पादन (मिलियन टन)
1950-51	8.4
1980-81	11.8
1999-2000	13.3
2005-2006	13.1

तालिका 2. दलहनी फसलों की अनुमानित मांग

वर्ष	मांग (मिलियन टन)
2005	20.0
2010	23.3
2015	27.0

स्रोत : गुप्ता व अन्य, 2004

कैथल, कुरुक्षेत्र, पानीपत, सोनीपत व रोहतक तथा जीन्द के सिंचित क्षेत्र) सघन खेती व आर्थिक लाभ को देखते हुए खरीफ या रबी में दाल वाली फसलों के उगाये जाने की सम्भावना नही के बराबर है। इन क्षेत्रों में गेहूँ की कटाई के बाद व धान की रोपाई करने से पहले लगभग 65-70 दिन तक समय उपलब्ध रहता है।

इस समय में ग्रीष्मकालीन मूँग की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। ऐसा करने से न केवल दाल उत्पादन में वृद्धि होगी बल्कि प्राकृतिक संसाधनों जैसे पानी की भी बचत की जा सकती है और ग्रीष्मकालीन धान उगाने पर अंकुश लगा सकते हैं।

दालों का भोजन में महत्त्व :

हमारे देश में अधिकतर लोग शाकाहारी हैं। इनके भोजन में प्रोटीन का प्रमुख स्रोत दालें हैं। शरीर की सामान्य वृद्धि व शरीर में होने वाली टूट-फूट की मरम्मत के लिए भोजन में प्रोटीन की प्रचुर मात्रा होना अत्यन्त आवश्यक है। यद्यपि प्रोटीन के अनेक स्रोत हैं जैसे मांस, मछली, अण्डा, दूध व दूध से बने पदार्थ। परन्तु महंगे होने के कारण सभी लोग इनको जुटा नहीं सकते। अत: स्पष्ट है कि प्रोटीन के लिए दालें ही एक ऐसा साधन हैं जिन्हें सभी लोग प्राप्त कर सकते हैं। दालों की प्रोटीन के अमीनो अम्ल अनाज (गेहूँ, जौ, बाजरा, मक्का व चावल आदि) की प्रोटीन के अमिनो अम्लों के पूरक हैं। इसीलिए भोजन में दालों के होने से प्रोटीन का जैविक मान बढ़ जाता है। यही कारण है कि हमारे पूर्वजों से चला आ रहा हमारा 'दाल-रोटी' या दाल-चावल/भात का भोजन एक बहुत ही उत्तम व सन्तुलित आहार माना गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार प्रति व्यक्ति दाल की उपलब्धता 80 ग्राम प्रति दिन होनी चाहिए। परन्तु भारत में दुर्भाग्यवश यह मात्रा घटती ही जा रही है। आंकड़ों के अनुसार हमारे देश में वर्ष 1951 में दालों की उपलब्धता प्रति व्यक्ति प्रति दिन 64 ग्राम होती थी जो घटकर वर्ष 2006 में 37 ग्राम रह गई है (मसूद अली, 2006)। विभिन्न प्रकार की दालों में प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेटस, रेशा, भस्म, कैल्शियम, फास्फोरस, लोहा व ऊर्जा प्रचुर मात्रा में होते हैं जो संतुलित आहार में अवश्य होने चाहिए। भोजन में दालों का प्रयोग बढ़ाकर हमारे देश में पांच वर्ष से कम आयु के लगभग 80 मिलियन बच्चों को प्रोटीन ऊर्जा की कमी से होने वाले विकारों से बचाया जा सकता है। अन्य दालों की अपेक्षा मूँग में पाए जाने वाले प्रोटीन, पाचकता, पौष्टिकता व जैविक मान के आधार पर सर्वोत्तम दाल माना गया है। शीघ्र पचने के कारण बढ़ते बच्चों, बूढ़ों व रोगियों के लिए मूँग की दाल सर्वोत्तम मानी गई है। अक्सर कुछ दालों में थोड़ी मात्रा में कुछ हानिकारक तत्व होते हैं परन्तु मूँग ऐसे तत्वों से पूर्णतया मुक्त है। इनकी प्रोटीन में अस्पार्टिक, ग्लूटामिक, लाईसीन, ल्यूसीन व आरजीनीन नामक अमिनो अम्ल विशेषकर

तालिका 3. दालों का पोषक तत्त्वीय संगठन (100 ग्राम तत्त्व में)

दालें	प्रोटीन	वसा	कार्बोहाइड्रेटस	रेशा	भस्म (ग्राम)	कैल्शियम (मि.ग्रा.)	फास्फोरस (मि.ग्रा.)	लोहा (मि.ग्रा.)	ऊर्जा (कि. कलौरी)
चना	19.4	5.5	70.5	7.4	3.4	280	301	12.3	396
अरहर	21.9	1.5	72.5	8.1	4.2	179	316	16.6	383
मटर	25.6	2.3	65.5	9.1	4.1	91	331	6.6	391
उड़द	25.5	1.8	71.0	4.9	3.8	123	390	9.4	385
मूंग	25.6	1.3	69.2	4.9	3.9	118	370	7.9	381
मसूर	26.9	0.2	67.3	4.3	3.2	71	331	7.7	383
लोबिया	25.6	1.7	67.5	13.7	5.1	376	385	6.0	316
मोठ	20.7	1.3	72.5	5.8	3.3	120	332	-	378

स्रोत : विश्व खाद्य संगठन की वार्षिक रिपोर्ट (1999-2000)

अधिक मात्रा में होते हैं। सभी दालों की भांति सल्फर युक्त अमिनो अम्लों की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है।

दालों का कृषि में महत्व

दालों का भोजन में महत्व के साथ-साथ दलहनी फसलों का कृषि में विशेष महत्व है। परन्तु, दुर्भाग्यवश हरित क्रांति का लाभ सिर्फ अनाज वाली फसलों विशेषकर चावल व गेहूँ में ही संभव हो पाया है जिसके फलस्वरूप भारत खाद्यानों में अवश्य आत्मनिर्भर हो गया है। परन्तु दालों का वर्तमान में भी आयात करना पड़ता है। भारतीय परिवेश में किसी भी फसल का महत्व उस फसल से होने वाली आमदनी से आंका जाता है। शायद यही कारण रहा होगा कि चना व मसूर को छोड़कर अन्य दलहनी फसलों के तहत क्षेत्र में कमी उनसे होने वाली कम आमदनी ही है। इसलिए दलहनी फसलों को कृषि में उचित स्थान नहीं मिल पाया। यदि संसाधनों की दृष्टि से देखा जाए तो दलहनी फसलें प्राकृतिक संसाधनों का कम से कम उपयोग करके मिट्टी की उर्वरता एवं संरचना में सुधार करती हैं। दलहनी फसलों की जड़ों में विशेष प्रकार की गाठें (नोडयूलस) पायी जाती हैं जो वायुमंडल में उपलब्ध 78 प्रतिशत नाइट्रोजन को भूमि में स्थिरीकरण का कार्य करती हैं। आज के युग में नत्रजन को रासायनिक खाद के रूप में प्रयोग करना महंगा ही नहीं अपितु इससे मृदा (भूमि) की भौतिक, रासायनिक व जैविक दशा भी खराब होती है (कुण्डु व अन्य, 2005)। अत: वायुमण्डल में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन नाईट्रोजन का भूमि में स्थिरीकरण दलहनी फसलें उगाकर किया जा सकता है क्योंकि दलहनी फसलें औसतन 12-60 किलोग्राम प्रति एकड़ नाईट्रोजन भूमि में जमा करती हैं (गुप्ता व अन्य, 2004)। भूमि में जमा हुई यह नाइट्रोजन दलहनी फसलों के बाद उगाई जाने वाली अगली फसल द्वारा प्रयोग की जाती है और फसल की अधिक पैदावार मिलती है। इसके अलावा दलहनी फसलों को हरी खाद के रूप में उगाकर भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाया जा सकता है।

ग्रीष्मकालीन मूँग ही क्यों?

सौभाग्यवश हमारे देश में लगभग एक दर्जन से भी अधिक दलहनी फसलें उगाई जाती हैं जिनमें चना, मसूर, मटर, अरहर, मूँग, मोठ, उड़द व लोबिया प्रमुख हैं। भारत के मध्य, उत्तरी व पश्चिमी भाग में खरीफ में मुख्यतया मूँग व उड़द ही उगाई जाती हैं। यह निश्चित है कि खरीफ में इन फसलों द्वारा धान की जगह लेना तो काफी मुश्किल लगता है परन्तु गेहूँ के बाद धान से पहले मूँग को ग्रीष्मकालीन फसल के रूप में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। उत्तरी भारत में विशेषकर पंजाब, हरियाणा व दिल्ली राज्यों में गेहूँ की फसल अप्रैल के प्रथम पखवाड़े में पक जाती है और धान की रोपाई मध्य जून के बाद की जाती है। इस तरह गेहूँ के बाद लगभग 60-70 दिनों का सदुपयोग मूँग उगाकर किया जा सकता है। मूँग की इस फसल को ग्रीष्मकालीन (समर) मूँग के तौर पर लेकर दालों की बढ़ती मांग की कुछ हद तक पूर्ति की जा सकती है। ग्रीष्मकालीन मूँग की सफलता कम अवधि वाली किस्मों की उपलब्धता पर निर्भर करती है जो 60-70 दिन में पककर तैयार हो जाती हैं।

तालिका 4. दलहनी फसलों का भूमि में नाइट्रोजन स्थिरीकरण (अनुमानित) कि.ग्रा. प्रति एकड़

दलहनी फसल	नाइट्रोजन स्थिरीकरण
चना	16-54
अरहर	12-39
मूँग	12-30
उड़द	12-30
मसूर	24-59
मटर	16-50

आमतौर पर ग्रीष्मकालीन धान (साठी धान) जमीन के भूमिगत जल-स्तर को नीचे ले जाता है। इसी तरह धान की ज्यादा अगेती रोपाई भी जमीन के भू-स्थल को नीचे करता है। भूमिगत जल-स्तर नीचे जाने से बिजली की खपत भी बढ़ जाती है जिससे कृषि लागत में वृद्धि होती है। साठी धान की जगह ग्रीष्मकालीन मूँग की काश्त करने से किसान खुद के लाभ के साथ-साथ संसाधनों का उचित सरंक्षण भी करता है।

ग्रीष्मकालीन मूँग उगाने से लाभ :

वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम द्वारा कम समय में पकने वाली कितनी ही नई उन्नतशील किस्में विकसित की गई हैं। इन किस्मों को रबी की फसल कट जाने के बाद व खरीफ की मुख्य बिजाई से पहले के उपलब्ध समय में सुविधापूर्वक उगाया जा सकता है। इस प्रकार मूँग को ग्रीष्म या जायद की फसल के रूप में ले सकते हैं। ग्रीष्मकालीन मूँग उगाने से निम्नलिखित लाभ हैं।

1. अतिरिक्त आय :

वर्ष की दो प्रमुख फसलों के बीच में यह फसल लेने से किसान को अतिरिक्त आय मिल जाती है जिससे खरीफ की फसल के लिए बीज, खाद व दवाइयां खरीदे जा सकते हैं। इस प्रकार किसान की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।

2. खेत का सदुपयोग :

आलू, गन्ना, सरसों व गेहूँ और जौ की कटाई के बाद खरीफ की फसल बोने से पहले खेत बहुधा 60-70 दिन तक खाली पड़े रहते हैं। इस अवधि में जल्दी पकने वाली मूँग लगाकर खेत व समय का सदुपयोग किया जा सकता है।

3. उपजाऊ शक्ति में सुधार :

मूँग दलहनी फसल होने के कारण वायुमंडल से नाइट्रोजन खींचकर जमीन में इकट्ठा करती है। इस नाइट्रोजन से न केवल अपनी आवश्यकता पूरी करती है बल्कि कटाई के बाद भूमि में जड़ों व पत्तों द्वारा काफी मात्रा में नाइट्रोजन छोड़ती है जिसके फलस्वरूप खेत की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है। इसके अलावा पत्तियों के गलने-सड़ने से भूमि में जीवांश पदार्थ में भी वृद्धि होती है। नाइट्रोजनयुक्त रासायनिक खाद अधिक महंगे होने के कारण हर किसान उन्हें नहीं जुटा पाता। फसल-चक्र में मूँग या अन्य कोई दलहनी फसल को उगाना भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने का सबसे सरल, सस्ता व कारगर उपाय है।

4. उगाने में कम खर्च :

खरीफ के मौसम में वर्षा होने के कारण खरपतवार बहुत ही अधिक संख्या में व उग्र रूप से उगते हैं जिसके फलस्वरूप फसल को काफी नुकसान होता है। कभी-कभी तो फसल पूर्णतः नष्ट हो जाती है। गर्मी के मौसम में खरपतवार अपेक्षाकृत कम उगते हैं व इनकी बढ़वार भी कम होती है। अतः निराई-गोड़ाई करने में कम खर्च आता है। यदि रबी की फसल में खाद की पूरी मात्रा डाली गई है तो इस मौसम में खाद डालने की भी आवश्यकता नहीं होती क्योंकि रबी की फसल से बची हुई उर्वरा शक्ति ही इस फसल के लिए पर्याप्त है। इस प्रकार खाद व रखरखाव में कम खर्च आता है। इसके अतिरिक्त इस मौसम में फलियां नहीं तोड़नी पड़ती। 80-90 प्रतिशत फलियां पक जाने पर कटाई कर ली जाती है।

5. पानी का सदुपयोग :

इस मौसम में सिंचाई के पानी का कोई विशेष उपयोग नहीं होता। अगर मूँग की फसल उगायें तो उपलब्ध सिंचाई साधनों का सदुपयोग किया जा सकता है। इसके अलावा इस मौसम में अन्य फसल न होने के कारण मजदूरों के मिलने में भी कोई विशेष समस्या नहीं होती और काम मिलने से उनकी आय भी होती है। यदि घर में आदमी है तो उनको भी काम मिल जाता है।

6. बीमारियों व कीड़ों का कम प्रकोप :

खरीफ के मौसम में नमी होने के कारण बीमारी व कीड़ों का प्रकोप अत्यधिक होता है जिनको नियन्त्रण करने में कीटनाशक दवाइयों के छिड़काव करने में काफी खर्चा होता है। अक्सर देखा गया है कि पौध संरक्षण साधनों के अभाव में मूँग की खरीफ की फसल पूर्णतः नष्ट हो जाती है परन्तु इस मौसम में शुष्क व गर्मी के कारण इनका

प्रकोप कम होता है। इनको रोकने के लिए 1-2 छिड़काव ही पर्याप्त है। कभी-कभी तो पौध संरक्षण उपायों के बिना भी ग्रीष्मकालीन मूँग की सन्तोषजनक पैदावार मिल जाती है।

7. भूमि कटाव से बचाव :

गर्मी के मौसम में फसल न हो तो गर्म हवाओं या आंधी से भूमि कटाव की सम्भावना बनी रहती है। इस मौसम में मूँग की फसल उगाने से इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

8. दाल-उत्पादन में वृद्धि :

इस मौसम में कम खर्च से अच्छी पैदावार मिलती है। इस प्रकार देश में दाल-उत्पादन में वृद्धि होगी जिसके फलस्वरूप प्रति व्यक्ति दाल की खपत बढ़ेगी। छोटे किसान तो निःसन्देह अपनी वर्ष भर की दाल की आवश्यकता ग्रीष्मकालीन मूँग से पूरी कर सकते हैं।

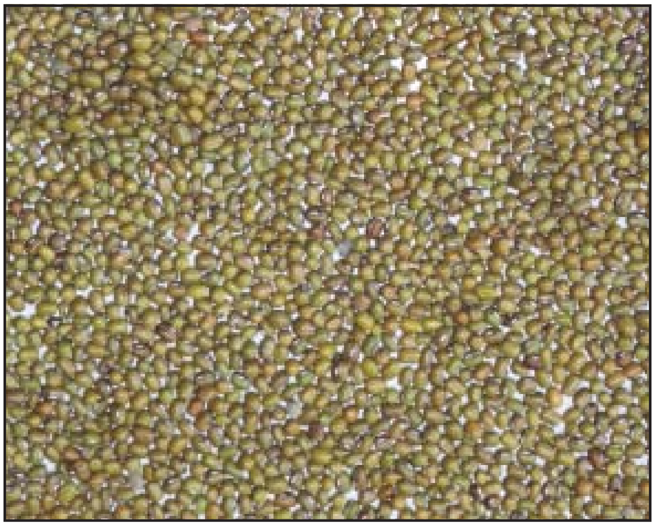

9. विदेशी मुद्रा बचत :

ग्रीष्मकालीन मूँग उगाकर दाल उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है जिसके फलस्वरूप दलहनों या दालों के आयात कुछ हद तक कम किया जा सकता है। अतः दलहनों के आयात पर खर्च होने वाली विदेशी मुद्रा को बचाया जा सकता है।

कृषि पद्धति में ग्रीष्मकालीन मूँग की सम्भावनाएँ :

विशेषकर उत्तर भारत के पंजाब व हरियाणा राज्यों के अधिकतर क्षेत्र में धान व गेहूँ का फसल चक्र अपनाया जाता है। धान-गेहूँ कृषि पद्धति के अलावा आलू, तोरिया, मटर, सरसों व गन्ना फसलें मार्च के महीने में पककर खेतों को खाली कर देती हैं। इन क्षेत्रों में ग्रीष्मकाल में खेतों का सदुपयोग करना अति आवश्यक है। इसलिए प्रचलित कृषि पद्धति में कम अवधि वाली ग्रीष्मकालीन मूँग की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं क्योंकि ग्रीष्मकालीन मूँग बिजाई से पकाई तक केवल 65-70 दिन ही लेती है और धान की रोपाई के समय तक पककर तैयार हो जाती है। ग्रीष्मकालीन मूँग उगाना विशेष तरह के प्रचलित फसल चक्र में मूल्यसंवर्धन का काम करती है। वैसे तो ग्रीष्मकालीन मूँग की मार्च के महीने में ही बिजाई करने की सिफारिश की गई है परन्तु कृषि विज्ञान केन्द्रों के अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनों में खासकर उत्तर-पूर्वी हरियाणा में ग्रीष्मकालीन मूँग को गेहूँ की कटाई के बाद 20 अप्रैल तक भी सफल पाया गया है। अतः ग्रीष्मकालीन मूँग इन क्षेत्रों के प्रचलित फसल चक्रों में आलू, मटर, तोरिया, सरसों, गन्ना तथा गेहूँ के बाद उगाने की प्रबल सम्भावनाएं हैं।

कृषि विज्ञान केन्द्र, कुरूक्षेत्र, करनाल व जीन्द द्वारा ग्रीष्मकालीन मूँग पर वर्ष 2006 में किसानों के खेतों पर अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन लगाए गये। इन प्रदर्शनों की बिजाई धान-गेहूँ फसल चक्र में गेहूँ की कटाई के बाद की गई। इनका विवरण नीचे दिया गया है।

तालिका 5. मूँग एस.एम.एल. 668 व अन्य किस्मों का तुलनात्मक प्रदर्शनों के परिणाम - 2006

जिला	किसान संख्या	क्षेत्रफल (हैक्टर)	औसत पैदावार (क्विं./है.) एस.एम.एल.	के. 851/ टी 44
करनाल	5	2.00	7.80	5.20
कुरुक्षेत्र	9	4.00	8.80	7.50
जीन्द	5	2.00	7.80	5.20
औसत	8.13	6.00		

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि एस.एम.एल. 668 ने के. 851 व अन्य स्थानीय किस्मों से 2.13 क्विंटल प्रति हैक्टर ज्यादा पैदावार दी है। अतः एस.एम.एल. 668 किस्म

को गेहूँ-धान फसल चक्र बाहुल्य क्षेत्रों में गेहूँ की कटाई के बाद सफलतापूर्वक उगाकर मूँग की खेती का समावेश किया जा सकता है।

ग्रीष्मकालीन मूँग में कृषि क्रियाएं :

ग्रीष्मकाल में उगाई जाने वाली मूँग की सफल खेती के लिए वैज्ञानिक तरीका अपनाना बहुत जरूरी है। उनमें सबसे महत्वपूर्ण किस्मों का चुनाव है। ग्रीष्मकालीन मूँग की काश्त के लिए उपयुक्त किस्में नीचे दी गई है।

उन्नतशील किस्में :

प्राय: देखा गया है कि किसान स्थानीय बाजार से कम कीमत पर किसी भी अनधिकृत बीज विक्रेताओं से बीज खरीद लेते हैं या घर पर रखा पुराना कटा-फटा व कीड़े लगे बीज की बिजाई कर देते हैं। इस तरह के बीज का जमाव कम होने के कारण खेत में पौधे की संख्या पूरी नहीं होती और पैदावार में बहुत कमी आ जाती है। कई बार यह भी देखा गया है कि स्थानीय किस्में बिजाई करने पर फसल पकती नहीं या लगातार बढ़ती रहती है। उन्नत किस्म के बीज की कीमत ज्यादा होती है लेकिन इससे कई बार दो या ढ़ाई गुणा पैदावार मिलती है। इसलिए अच्छी पैदावार लेने के लिए उन्नत किस्म का चुनाव बहुत जरूरी है।

हरियाणा में ग्रीष्मकालीन मूँग की बिजाई के लिए के. 851 व मुस्कान किस्मों की सिफारिश की गई है। इन दोनों किस्मों की बिजाई का उपयुक्त समय पूरा मार्च महीना है। इसलिए इन किस्मों को गेहूं-धान वाले क्षेत्रों/जिलों में नहीं उगाया जा सकता है क्योंकि इन जिलों में गेहूँ की कटाई अप्रैल के प्रथम पखवाड़े में होने के कारण खेत खाली नहीं होते। अत: कृषि विज्ञान केन्द्र के वैज्ञानिकों ने कम समय (60-65 दिन) में पकने वाली किस्म एस.एम.एल. 668 (पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा विकसित व अनुमोदित) के किसान के खेत पर प्रदर्शन लगाये जिनमें अच्छी पैदावार मिली है।

एस.एम.एल. 668

यह किस्म पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा विकसित व अनुमोदित की गई है। यह कम अवधि वाली किस्म है और 60 से 65 दिन में पककर तैयार हो जाती है। अत: इस किस्म को धान-गेहूँ फसल चक्र में गेहूँ की कटाई के बाद सफलापूर्वक उगाया जा सकता है। पौधे मध्यम आकार व मध्यम ऊँचाई वाले होते हैं। दानों का आकार मोटा (100 दानों का वजन 6.1 ग्राम), रंग चमकीला हरा व आकर्षक होता है। इसकी फलियाँ पकने पर चटकती नहीं है और 80-90 प्रतिशत फलियां एक साथ पकती हैं। फलियाँ पकने पर झुक जाती हैं। पीले पत्ते वाले मौजेक वायरस रोग के लिये सहनशील है। इस किस्म की औसतन पैदावार 4 क्विंटल प्रति एकड़ है। इस किस्म की अन्य विशेषताएँ तालिका 6 में दी गई है।

तालिका 6. मूँग एस.एम.एल. 668 की विशेषताएँ

विशेषता	
एक फली में दानों की संख्या	8.7
प्रति पौधा फलियों की संख्या	21.6
सूखी पत्ती वजन प्रति पौधा	7.2 ग्राम
पत्तियों के अलावा प्रति पौधा वजन	9.2 ग्राम
पूरे पौधा (सूखा) का वजन	16.4 ग्राम
प्रति पौधा पैदावार	11.6 ग्राम
हारवेस्ट इंडेक्स	33.33 प्रतिशत

बिजाई का समय :

हरियाणा में ग्रीष्मकालीन मूँग की बिजाई की सिफारिश मार्च का पूरा महीना है। परन्तु यह समय गेहूँ-धान फसल चक्र वाले जिलों जैसे अम्बाला, करनाल, कैथल, कुरुक्षेत्र, पानीपत, पंचकुला के लिए अनुकूल नहीं है क्योंकि गेहूँ की कटाई 10-15 अप्रैल से शुरू होती है। अत: इन क्षेत्रों में ग्रीष्मकालीन मूँग की खेती की सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के कृषि विज्ञान केन्द्र के वैज्ञानिकों ने एस. एम.एल. 668 के गेहूँ की कटाई उपरान्त दो वर्षो तक किसानों के खेतों पर अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन लगाये। इन प्रदर्शनों का विवरण नीचे किया गया है।

तालिका 7 से स्पष्ट है कि गेहूँ-धान फसल चक्र वाले क्षेत्रों में गेहूँ की कटाई के बाद ग्रीष्मकालीन मूँग को सफलतापूर्वक उगाकर 5 से 5.5 क्विंटल प्रति एकड़ पैदावार ली जा सकती है। इन प्रदर्शनों की अधिकतम पैदावार 6

तालिका 7. ग्रीष्मकालीन मूँग पर अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनों का विवरण

विवरण	वर्ष	
	2005	2006
मूँग की किस्म	एस.एम.एल. 668	एस.एम.एल. 668
बिजाई का समय	7 से 10 अप्रैल	17 से 27 अप्रैल
प्रदर्शनों की संख्या	3	3
प्रदर्शनों का क्षेत्रफल	5 एकड़	8 एकड़
बीज की मात्रा (कि.ग्रा. प्रति एकड़)	10	10
उर्वरक (डी.ए.पी. प्रति एकड़)	25 कि.ग्रा.	25 कि.ग्रा.
सिंचाई	2	2
गोड़ाई	1	1
औसत ऊपज (क्विं प्रति एकड़)	5.5	5.0

क्विंटल प्रति एकड़ तक ली गई। अतः किसान भाई गेहूँ धान फसल चक्र वाले क्षेत्रों में ग्रीष्मकालीन मूँग उगाकर अपनी आमदनी में बढ़ोतरी कर सकते हैं और दालों की उत्पादन वृद्धि में अपना योगदान दे सकते हैं।

ग्रीष्मकालीन मूँग की बिजाई अगर सही समय पर की जाए तो इसके बाद खरीफ की कोई भी फसल सही समय पर ली जा सकती हैं। बिजाई पछेती करने से फसल पर मानसून का प्रतिकूल असर पड़ने का अंदेशा रहता है। इसलिए ग्रीष्मकाल में बिजाई किस्मों को ध्यान में रखकर ही करनी चाहिए ताकि फसल की बढ़वार व उत्पादन अधिक से अधिक प्राप्त किया जा सके।

भूमि :

अच्छी मूँग की फसल लेने के लिए दोमट या रेतीली दोमट भूमि उपयुक्त रहती है। भारी जमीन में भी इसकी सफल काश्त की जा सकती है। अन्य दलहनी फसलों की तरह मूँग को अम्लीय या क्षारीय भूमि में नहीं उगाया जा सकता। अच्छी गुणवता वाले भूमिगत पानी वाले क्षेत्र में मूँग को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। समय पर बिजाई वाले गेहूँ से खाली हुए खेतों में ग्रीष्मकालीन मूँग ली जा सकती है। इसके अलावा धान-गेहूँ उगाने वाले क्षेत्रों में आलू, गन्ना व सरसों से खाली खेत भी मूँग उगाने के लिए सर्वोत्तम है।

भूमि की तैयारी

अच्छी पैदावार लेने के लिए खेत की अच्छी तैयारी करनी चाहिए ताकि जमाव अच्छा हो और नमी भी अच्छी बनी रहे। सामयिक बिजाई करने के लिए गेहूँ की कटाई से एक सप्ताह पहले रौनी/पलेवा करें और गेहूँ की कटाई के तुरन्त बाद दो तीन जुताई करके खेत को अच्छी प्रकार से तैयार करें। ध्यान रहे कि प्रत्येक जुताई के बाद पाटा या सुहागा अवश्य लगायें ताकि नमी का संरक्षण हो सके। खेत की तैयारी करते समय गेहूँ या दूसरी फसलों के झुण्डे बाहर निकाल देने चाहिएं। अगर गेहूँ की फसल की कटाई 15 अप्रैल तक हो जाती है तो बाद में रोनी या पलेवा करके भी ग्रीष्मकालीन गेहूँ की बीजाई की जा सकती है। इस बात का विशेष ध्यान रखना है कि बिजाई के समय खेत में नमी पूरी हो ताकि संतोषजनक जमाव हो सके।

बीज की मात्रा :

इस मौसम में पौधों की बढ़वार अपेक्षाकृत कम होती है। अतः अच्छी पैदावार लेने के लिए खरीफ मौसम से कुछ अधिक बीज डालें व खूड़ से खूड़ का फासला भी कम रखें। पौधों की समुचित संख्या के लिए 10-12 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ पर्याप्त रहता है।

बीजोपचार :

बीज को बोने से एक दिन पहले या उसी दिन पानी में

भिगोयें। ऐसा करने से हल्का व घुना हुआ बीज पानी के ऊपर तैर जायेगा जिसको बाहर निकाल दें। पानी में नीचे रहने वाला बीज तुरन्त निकाल कर सुखा लेना चाहिए। दलहनी फसलों में राइजोबियम (जीवाणु खाद) से बीज उपचार करने से पौधों में बनने वाली गाँठे अधिक व मजबूत होती हैं जो वायुमण्डल से नाईट्रोजन लेकर भूमि में जमा करती हैं। इसलिए मूँग के बीज को भी राइजोबियम के टीके से उपचारित करना अति आवश्यक है। राइजोबियम का टीका (कल्चर) कृषि अनुसंधान संस्थाओं, कुछ सहकारी संस्थाओं व कृषि विश्वविद्यालयों से बहुत थोड़ी कीमत पर (एक पैकेट का मूल्य 10 रुपये) आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। उपचार का तरीका भी आसान है। इसके लिए 50 ग्राम गुड़ का लगभग 250 मिलीलीटर पानी में घोल बना लें और छाया में पक्के फर्श पर बीज फैलाकर हाथों से मिला दें ताकि प्रत्येक बीज पर गुड़ का घोल चिपक जाए। इसके बाद राइजोबियम के पैकेट को खोलकर गुड़ लगे हुए बीज पर डालें और हाथों से सारे बीज में मिला दें जिससे सभी दानों पर कल्चर चिपक जाए। कल्चर लगे हुए बीज को छाया में सुखा कर बिजाई कर सकते हैं।

बिजाई का तरीका :

बिजाई से पहले खेत तैयार करते समय यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि खेत में नमी पूरी हो ताकि बीज का जमाव पूरा हो सके। बिजाई हमेशा लाईनों में करनी चाहिए ताकि बाद में छंटाई करते समय कोई दिक्कत न आए। लाईनों का फासला 20 से 25 सैं.मी. रखकर बिजाई पोरा या केरा विधि से करें। ऐसा करने से बीज का जमाव अधिक से अधिक होता है जिससे प्रति इकाई उत्पादन पूरा मिल सके।

खादों का प्रयोग :

दलहनी फसलों में नाईट्रोजन वाली खाद की बहुत कम आवश्यकता होती है और वह भी सिर्फ आरम्भिक बढ़वार के लिए। बाद में तो दलहनी फसलों की जड़ों में होने वाली गाँठें स्वयं ही वायुमण्डल में उपलब्ध नाईट्रोजन का स्थिरीकरण करती रहती हैं जो फसल की जरूरत को तो पूरा करती ही हैं तथा साथ-साथ भूमि में भी नाईट्रोजन जमा करती रहती हैं। यही कारण है कि ग्रीष्मकालीन मूँग में भी बिजाई के समय केवल 6-8 किलोग्राम शुद्ध नाईट्रोजन प्रति एकड़ डाली जाती है। नाईट्रोजन के अलावा 16 किलोग्राम शुद्ध फास्फोरस प्रति एकड़ डालनी चाहिए। मूँग में नाईट्रोजन व फास्फोरस की पूरी मात्रा बिजाई के समय ही खेत में डाली जाती है और इसके बाद किसी भी तरह की खाद डालने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आमतौर पर 100 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट और 12-15 किलोग्राम यूरिया प्रति हैक्टर डालना चाहिए। नाईट्रोजन व फास्फोरस की पूर्ति 35 किलो डी.ए.पी. खाद डालकर भी पूरी की जा सकती है। अगर खेत में जिंक की कमी हो तो 10 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति एकड़ की दर से छिड़क देना चाहिए। फास्फोरस वाली खाद को बिजाई करते समय हल से पोर किया जा सकता है।

छँटाई :

बिजाई के लगभग दो सप्ताह बाद जब पौधे व्यवस्थित हो जाएं तब पौधे से पौधे का फासला 8-10 सैं.मी. रखकर अतिरिक्त पौधे निकाल देने चाहिए। पौधों की सही बढ़वार के लिए छंटाई करना अति आवश्यक है ताकि प्रत्येक पौधे को उचित हवा, नमी, सूर्य की रोशनी व पोषक तत्त्व पूरी मात्रा में उपलब्ध हो सकें। जरूरत से कम व अधिक पौधों की संख्या होने से फसल की बढ़वार व उत्पादन पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

खरपतवार नियन्त्रण :

खरपतवार फसल के दुश्मन हैं क्योंकि ये जमीन से नमी का शोषण करते हैं और फसल की बढ़वार में बाधक साबित होते हैं। अतः खरपतवार नियन्त्रण बहुत ही आवश्यक है। बीजाई करने के बाद कुछ स्थानों पर मोथा नामक खरपतवार की भयंकर समस्या होती है। पहली सिंचाई करने से पहले सूखी दशा में खुरपी या कसोला से निराई-गोड़ाई करके निकाल देना चाहिए। पहली सिंचाई करने के बाद चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार उग आते हैं जिनको एक गोड़ाई करके निकाल देना चाहिए। अगर पहली सिंचाई के बाद खरपतवार न उगें तो भी गोड़ाई अवश्य करनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से भूमि में हवा का संचार सुचारू रूप से होता है जिसके फलस्वरूप जड़ों

का विकास अच्छी प्रकार होता है। बिजाई के 20-25 दिन बाद निराई या गोड़ाई करके खरपतवार को निकाल देना चाहिए। बाद में भी आवश्यकतानुसार निराई व गुड़ाई करके फसल को खरपतवार रहित रखना चाहिए। हाथ से निराई-गोडाई करके खरपतवारों का नियन्त्रण सर्वोत्तम है। प्रयोगों द्वारा सिद्ध हुआ है कि पैंडीमेथालिन (स्टाम्प ई.सी.) नामक शाकनाशक दवाई के प्रयोग से खरपतवारों को काफी हद तक नियन्त्रण कर सकते हैं। एक एकड़ में शाकनाशक की 1.25 किलोग्राम क्रियाशील मात्रा 250 लीटर पानी में घोलकर बिजाई के तुरन्त बाद (1-2 घंटे) छिड़काव करें।

सिंचाई :

ग्रीष्मकालीन मूँग की खेती सिंचित क्षेत्रों में ही सफलतापूर्वक की जाती है। अच्छी नमी में बिजी गई फसल में पहली सिंचाई 20-25 दिन बाद की जाती है। दूसरी सिंचाई इसके 15-20 दिन के अन्तर पर करनी चाहिए और इसके बाद सिंचाई ना करें। बोने से 50-55 दिन बाद सिंचाई न करें। ग्रीष्मकालीन मूँग में सिर्फ दो सिंचाईयां ही काफी रहती हैं। अधिक सिंचाई करने से पौधों की बढ़वार अत्यधिक हो जाती है और फलियां कम लगती हैं। ज्यादा सिंचाई करने से फलियां एक साथ भी नहीं पकती।

कीड़ों की रोकथाम :

ग्रीष्मकालीन फसल में खरीफ की अपेक्षा कीड़ों का प्रकोप काफी कम होता है। यदि ग्रीष्मकालीन मूँग में कभी-कभी बालों वाली सूण्डी, पत्ती छेदक, फली छेदक, हरा तेला व सफेद मक्खी आदि कीड़ों का प्रकोप हो भी जाए तो इनको कीटनाशकों द्वारा आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है। बालों वाली सूण्डी व पत्ती छेदक के नियन्त्रण के लिए 250 मिलीलीटर मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. या 200 मि.ली. डाईक्लोरवास (न्यूवान) 76 ई.सी. या 500 मि.ली. एण्डोसल्फान (थायोडान/थायोटाक्स/ एण्डोसल) 35 ई.सी. या 500 मि.ली. क्यूनलफास (एकालक्स) 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करना चाहिए।

हरा तेला व सफेद मक्खी के नियन्त्रण हेतु 400 मि. ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 250 मि.ली. डाइमेथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. या 350 मि.ली. आक्सीडेमेटान मिथाइल (मैटासिस्टाक्स) 25 ई.सी. या 250 मि.ली. फार्मोथियान (एन्थियो) 25 ई.सी. कीटनाशकों को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें।

बीमारियों की रोकथाम :

आमतौर पर ग्रीष्मकालीन मूँग में बीमारियों का प्रकोप नहीं होता। फिर भी मूँग में किसी कारणवश यदि निम्नलिखित में से कोई बीमारी आ भी जाए तो उसकी रोकथाम की जा सकती है।

पत्तों के धब्बों का रोग :

पत्तों पर कोनदार व भूरे लाल रंग के धब्बे बन जाते हैं जो बीच में घूसर या भूरे रंग के और सिरों पर लाल-जामुनी रंग के होते हैं। ये धब्बे कई बार तने व फलियों पर भी दिखाई देते हैं। इन धब्बों की रोकथाम करने के लिए ब्लाईटाक्स-50 या इण्डोफिल एम.-45 की 600-800 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से 200 लीटर पानी में मिलाकर स्प्रे करें।

पत्तों का जीवाणु रोग :

यह रोग पत्तों की निचली सतह पर आता है जिसमें छोटे-छोटे जलसिक्त बिन्दु से दिखाई पड़ते हैं तथा इन बिन्दुओं के आसपास पत्ते का भाग गलने लगता है। इस रोग के नियंत्रण के लिए कापर ऑक्सीक्लोराइड की 600-800 ग्राम मात्रा को 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए।

जड़ गलन रोग :

जड़ गलन रोग से प्रभावित पौधों की जड़े गलना शुरू हो जाती हैं तथा पौधे पीले पड़कर सिकुड़ने लगते हैं। इस रोग का अधिक प्रकोप होने पर पूरा पौधा ही मर जाता है। इस रोग की रोकथाम बिजाई से पहले बीज उपचार से ही सम्भव है। बीज उपचार हेतु 4 ग्राम थाइरम प्रति किलोग्राम बीज का प्रयोग करना चाहिए। जड़ गलन रोग की समस्या वाले खेतों में कम से कम तीन साल तक मूँग नहीं उगानी चाहिए।

पीला मोजैक रोग :

मूँग मे लगने वाला यह भयानक रोग है तथा इस बीमारी

को सफेद मक्खी फैलाती है। इस रोग से प्रभावित पौधों के पत्ते दूर से ही पीले नजर आने शुरू हो जाते हैं। रोग अधिक फैलने से पूरा पत्ता ही पीला पड़ जाता है। पीले मोजैक से प्रभावित फसल की पैदावार में काफी कमी आ जाती है। वैसे तो ग्रीष्मकालीन मूँग में इस रोग की सम्भावना बहुत ही कम होती है परन्तु रोगग्राही किस्मों में यह रोग आ सकता है। इस रोग से बचाव के लिए रोगरोधी किस्में उगानी चाहिएं। इस रोग की रोकथाम के लिए सफेद मक्खी की रोकथाम करनी पड़ती है। इसलिए सफेद मक्खी के नियंत्रण हेतु बिजाई के 20-25 दिन बाद 10-15 दिनों के अन्तर से 250 मि.ली. डाईमेथोएट 30 ई.सी. (रोगोर) या 25 मि.ली. आक्सीडेमेटान मिथाईल 25 ई.सी. (मैटासिस्टाक्स) या 250 मि.ली. फार्मेथियान 25 ई.सी. (एंथियो) को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। शुरूआत में यदि रोगी पौधे दिखाई पड़ने लगें तो उनको जड़ समेत उखाड़ कर नष्ट कर दें ताकि रोग आगे ना फैल जाए। मूँग के खेतों में खरपतवारों को भी समय पर निकाल देना उचित रहता है।

फसल की पकाई व कटाई :

ग्रीष्मकालीन मूँग में बिजाई के लगभग 50 दिन बाद फलियां पकनी शुरू हो जाती हैं। पकने पर फलियों का रंग गहरा भूरा हो जाता है। यदि फलियों को तोड़कर चिटकाया जाए तो दाने पके हुए मिलते हैं। यदि सम्भव हो सके तो जो फलियां पक जाएं उनको तुड़वा लेना चाहिए। फलियों को हाथ से तुड़वाने से दोहरा फायदा होता है। पहला तो भूमिहीन मजदूरों को कार्य मिल जाता है तथा दूसरा फलियां तोड़ने के बाद बचे हुए फसल अवशेष खेत में ही मिला देने पर हरी खाद का काम करते हैं जिससे खेत की उर्वरा शक्ति बढ़ने के साथ-साथ भौतिक दशा में भी सुधार होता है। वैसे तो ग्रीष्मकालीन मूँग की अधिकतर फलियां एक साथ ही पकती हैं जिन्हें पकने पर एक साथ भी तुड़वाया जा सकता है। फलियों को यदि हाथ से ना तुड़वाया जा सके तो सभी 80-90 प्रतिशत फलियां पकने पर फसल की कटाई एक साथ भी करवाई जा सकती है। फसल की कटाई के बाद फलियों को सुखाकर दानें निकाल लेने चाहिए।

बीज उत्पादन

यदि बीज उत्पादन के लिए फसल उगाई जा रही है तो निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखें :-

- ऐसे खेत को चुने जिसमें पहले साल मूँग न बोई गई हो। अगर मूँग बोई गई हो तो वही किस्म हो जिसका बीज उत्पादन किया जा रहा है।
- एक किस्म से दूसरी किस्म के खेत का फासला 20 मीटर आधार बीज के लिए व 10 मीटर प्रमाणित बीज के लिए रखना चाहिए।
- अच्छा बीज बनाने के लिए दूसरी किस्म के पौधों को निकालना अत्यन्त आवश्यक है। रोगग्रस्त पौधों को भी निकाल देना चाहिए। इस तरह के पौधे फूल आने से पहले, फूल आने के समय व पकने के समय निकालने चाहिएं।
- अगर थ्रेशर से दाने निकाले जाते हैं तो थ्रेशर की अच्छी प्रकार से सफाई करनी चाहिए। दूसरी किस्म के मिश्रण से बचाव के लिए गहाई स्थान की अच्छी तरह से सफाई करें।
- बीज को भण्डार करने से पहले उसकी अच्छी प्रकार सफाई व ग्रेडिंग करनी चाहिए। ग्रेडिंग के बाद बोरों में भरकर उचित लेबल लगाकर भण्डार में रखें।
- बोरों से बीज के नमूने लेकर जमाव, नमी, शुद्धता आदि के लिए परीक्षण किया जाता है। बोरों के ऊपर लेबल पर किस्म का नाम, जमाव व शुद्धता प्रतिशत आदि विवरण लिखा जाता है।

सन्दर्भ-सूची

कुण्डु, बी.एस. एवं यादव, के.एस. (2005). फसलों की पैदावार में जीवाणु खाद का योगदान। खेती दुनिया- विशेष किसान मेला अंक (24.9.2005) पृष्ठ 10.

खरीफ फसलों की समग्र सिफारिशें। विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार।

गुप्ता, एस., कुमार, एस. एवं चन्द्र, सी. (2004). दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भर कैसे बनें। उन्नत कृषि **43 (1)** : 10-13.

मसूद अली (2006). पलसीज न्यूजलैटर, भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर।

रमेश दूबे (2006). संकट से घिरे किसान। दैनिक जागरण, दिनांक 15.11.2006, पृष्ठ 6.

सफल किसान की कहानी

श्री चरण लाल, गाँव भिवानी खेड़ा, जिला कुरुक्षेत्र

मैंने कृषि विज्ञान केन्द्र, कुरुक्षेत्र से वर्ष 2005 व 2006 में ग्रीष्मकालीन मूँग किस्म एस.एम. एल. 668 का बीज लेकर गेहूँ की कटाई के बाद बिजाई की थी। वर्ष 2005 में गेहूँ की कटाई के बाद 7 अप्रैल को मूँग बोई थी जो 65 दिन में पककर तैयार हो गई तथा 6.0 क्विंटल प्रति एकड़ पैदावार मिली। इसी तरह वर्ष 2006 में भी एस.एम.एल. 668 किस्म की बिजाई गेहूँ की कटाई उपरान्त 20 अप्रैल को की थी और 5.5 क्विंटल प्रति एकड़ पैदावार मिली। वर्ष 2005 के तजुर्बे के आधार पर मैंने वर्ष 2006 में 5 एकड़ में मूँग की बिजाई की। मुझे पहली बार मूँग की इतनी बढ़िया किस्म मिली जिससे गर्मी में खेतों का सदुपयोग हुआ और काफी मुनाफा कमाया। वरना गर्मी में मेरे खेत खाली पड़े रहते थे। मूँग के बाद बासमती धान की भी अधिक उपज प्राप्त हुई। मैं एक छोटा-सा किसान हूँ और ग्रीष्मकालीन मूँग से मेरी आर्थिक हालत में काफी सुधार हुआ है।

Publications of Directorate of Extension Education, CCSHAU, Hisar

1. Herbicide Resistant *Phalaris minor* in Wheat – A Sustainability Issue
2. Major Weeds of Rice-Wheat Cropping System
3. धान-गेहूँ फसल-चक्र में समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन : वर्मीतकनीक
4. फसलों में खरपतवार नियंत्रण
5. भूँईफोड़/मरगोजा (आरोबेंकी इजिप्टियाका पर्स.) की तिलहनी तोरिया में ग्रस्तता एवं प्रबंध हेतु विकल्प
6. Broomrape (*Orobanche aegyptiaca* Pers.) Infestation in Oilseed Rapes and Management Options
7. Long-term Response of Zero-Tillage – Soil Fungi, Nematodes & Diseases of Rice-Wheat System
8. IPM Issues in Zero-Tillage System in Rice-Wheat Cropping Sequence
9. Zero Tillage – The Voice of Farmers
10. कृषि में विविधीकरण - खुम्बी उत्पादन का सफल प्रयास
11. Animal Production and Health : Frequently Asked Questions
12. Project Workshop Proceedings on Accelerating the Adoption of Resource Conservation Technologies in Rice-Wheat Systems of the Indo-Gangetic Plains, June 1-2, 2005
13. आंवला उत्पादन एवं परिरक्षण
14. Addressing Sustainablility Issues of Rice-Wheat Cropping System
15. ग्रामीण उत्थान में डेयरी का महत्त्व
16. ब्रायलर पालन
17. मधुमक्खी पालन - लाभदायक व्यवसाय
18. बेर - उत्पादन व परिरक्षण
19. ग्रामीण जैविक संसाधन - पशुपालन की भूमिका
20. नींबूवर्गीय फल - उत्पादन एवं परिरक्षण
21. कृषि विविधीकरण में बागवानी